गुरुत्व तरंगें: पैट्रिक दासगुप्ता से बातचीत

पिछले दिनों वैज्ञानिकों के एक अंतर्राष्ट्रीय दल ने गुरुत्व तरंगों को पकड़ने की घोषणा की थी। यह एक अप्रतिम क्षण था। यूएस स्थित उच्च टेक्नॉलॉजी से लैस प्रयोगशालाओं में भारत सहित कई देशों के वैज्ञानिकों के सहयोग से पहली बार गुरुत्व तरंगों को देखा गया, जिनकी भविष्यवाणी अल्बर्ट आइंस्टाइन ने एक सदी पहले की थी। गुरुत्व तरंगों की उपस्थिति के प्रमाण न सिर्फ खोजबीन के नए दायरे खोलेंगे और उनके लिए तौर-तरीके उपलब्ध कराएंगे बल्कि एक नितांत नए किस्म के खगोल शास्त्र का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इन मुद्दों को समझने के लिए डी. रघुनंदन ने दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के प्रोफेसर पैट्रिक दासगुप्ता से बातचीत की। प्रस्तुत है उस बातचीत का संपादित संस्करण।

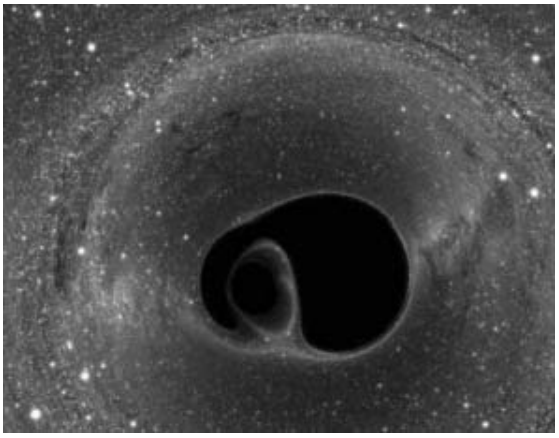

डी. रघुनंदन (डीआर): डॉ. दासगुप्ता, स्वागत है। सबसे पहले मैं चाहूंगा कि आप पाठकों को बताएं कि गुरुत्व तरंगें क्या हैं और ये इतनी महत्वपूर्ण क्यों हैं?

पैट्रिक दासगुप्ता (पीडी): ठीक है। आइंस्टाइन ने सामान्य सापेक्षता का सिद्धांत लगभग 100 साल पहले प्रस्तुत किया था। दरअसल, पिछले वर्ष हमने उस वर्ष की शताब्दि मनाई थी जब उन्होंने यह सिद्धांत पेश किया था। अब सामान्य सापेक्षता का सिद्धांत गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत है जो विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धांत के साथ सुसंगत है। विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धांत के तहत कोई भी संकेत निर्वात में प्रकाश के वेग से अधिक तेज़ नहीं चल सकता।

इस वजह से यदि पिंडों के द्वारा उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण को देखें, जैसा कि न्यूटन के सिद्धांत में बताया गया है, तो सवाल यह उठता है कि यदि ये पिंड अपना स्थान बदल लें, तो क्या गुरुत्वाकर्षण पर भी तत्काल (अविलंब) असर होगा?

न्यूटननुमा गुरुत्वाकर्षण की यह एक बड़ी समस्या थी और आइंस्टाइन ने इसे पहचान लिया था। आइंस्टाइन को लगा कि विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धांत के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत में संशोधन की ज़रूरत है। और 1915 में उन्होंने सामान्य सापेक्षता सिद्धांत का अंतिम रूप प्रतिपादित किया जो विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत द्वारा प्रस्तुत गुरुत्वाकर्षण से मेल खाता है। जैसे आइंस्टाइन का सिद्धांत कहता है कि यदि द्रव्यमान का एक वितरण उपस्थित है और वह वितरण समय के साथ बदलता है तो इसकी वजह से गुरुत्वाकर्षण में होने वाला परिवर्तन प्रकाश की गति से अधिक तेज़ी से गमन नहीं कर सकता। अर्थात वह निर्वात में प्रकाश की गति के बराबर गति से प्रसारित होगा। इस प्रसारण की लहरें ही गुरुत्व तरंगें हैं।

डीआर: यदि हम इतिहास में दो-एक सौ साल पहले जाएं, तो हम प्रकाश की तरंगों, प्रकाश की गति, उसके बाद विद्युत-चुंबकीय तरंगों के बारे में सोचने के आदी हैं। अब हम गुरुत्व तरंगों के बारे में सोच रहे हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है?

पीडी: तो आप जानते ही हैं कि प्रकाश का उपयोग ब्रह्मांड को समझने में किया जाता रहा क्योंकि हम तारों को देख सकते हैं। इसके बाद मैक्सवेल ने दर्शाया कि प्रकाश और कुछ नहीं, बदलता विद्युतीय व चुंबकीय क्षेत्र होता है। यानी प्रकाश विद्युत-चुंबकीय तरंगों का एक विशेष रूप है।

इसके बाद रेडियो तरंगें आईं और इनके संदर्भ में जगदीश चंद्र बोस ने अग्रणी काम किया था। बोस के काम को ही आगे चलकर मारकोनी ने उपयोग किया और रेडियो तरंगों को सूचना-संप्रेषण का एक साधन बनाया। और फिर बीसवीं सदी के शुरू में रेडियो-खगोल विज्ञान के साथ खगोल शास्त्र में एक क्रांति हुई। रेडियो खगोल शास्त्र ने हमें कई सारे ऐसे पिंडों के दर्शन कराए जो रेडियो तरंगें उत्सर्जित करते हैं। ये ऐसे पिंड थे जिनके बारे में प्रकाशीय खगोल शास्त्र में कल्पना भी नहीं की गई थी - इनमें क्वासर्स, ब्लेज़र्स, रेडियो-निहारिकाएं, पल्सर्स वगैरह शामिल थे। इन सबकी खोज रेडियो तरंगों की मदद से की गई।

डीआर: तो गुरुत्व तरंगों की खोज कैसे हुई?

पीडी: जब आइंस्टाइन का सिद्धांत प्रतिपादित हुआ तो यह स्पष्ट हुआ कि जिस तरह से विद्युत आवेश गति करते हुए विद्युत-चुंबकीय तरंगें पैदा करते हैं, ठीक उसी तरह जब द्रव्यमान का वितरण बदलता है, तो वह गुरुत्व तरंगें प्रसारित करता है। इसका अर्थ है कि द्रव्यमान के वितरण में परिवर्तन की वजह से गुरुत्व क्षेत्र समय व स्थान दोनों के लिहाज़ से बदलेगा।

अब हर चीज़ के साथ द्रव्यमान और संवेग जुड़ा होता है, ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु में द्रव्यमान होता है, और ऊर्जा तथा संवेग होता है। इसलिए जब भी ये वस्तुएं चलती हैं, वे तत्काल गुरुत्व तरंगें प्रसारित करती हैं। यानी बदलते गुरुत्व क्षेत्र को भांपकर हम यह पता कर सकते हैं कि विभिन्न पिंड समय के साथ कैसे बदल रहे हैं और उनके द्रव्यमान क्या हैं। वास्तव में गुरुत्व तरंगों को परोक्ष रूप से भांपने का काम सबसे पहले हुल्से और टेलर ने 1974 में किया था। उन्होंने दो सघन पिंड खोजे थे जिन्हें न्यूट्रॉन तारे कहते हैं, जो एक...

डीआर:...जो एक-दूसरे का चक्कर काट रहे थे...

पीडी: वे एक साझा केंद्र के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे थे और इस परिक्रमा की अवधि 8 घंटे थी। उन्होंने यह बात तो फौरन समझ ली कि न्यूट्रॉन तारे विशाल पिंड हैं। दोनों हमारे सूरज से 1.4 गुना भारी थे और जब वे 8-8 घंटे की अवधि एक-दूसरे का चक्कर काटते थे, तो उन्होंने निश्चित रूप से भारी मात्रा में गुरुत्व तरंगें पैदा की होंगी। यदि वे तरंगें पैदा कर रहे हैं, तो गुरुत्व ऊर्जा का ह्रास हो रहा होगा। इसका मतलब है कि वे धीरे-धीरे चक्कर काटते हुए अंदर की ओर जा रहे होंगे। हुल्से व टेलर ने यही देखा था कि ये दो न्यूट्रॉन तारे एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं, उनका चक्कर काटने का समय बढ़ता जा रहा है। इसके आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला था कि गुरुत्व तरंगें पैदा हो रही हैं। इसके लिए उन्हें 1993 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। मगर यह गुरुत्व तरंगों का प्रत्यक्ष मापन नहीं था बल्कि परिक्रमा-अवधि में परिवर्तन के आधार पर परोक्ष रूप से निकाला गया निष्कर्ष था।

अब 11 फरवरी के दिन जो घोषणा हुई थी, वह यह थी कि दो लिगो प्रयोगशालाओं - एक लुइसियाना में और दूसरी वॉशिंगटन में - ने स्वतंत्र रूप से गुरुत्वाकर्षण में परिवर्तन को पकड़ा है।

डीआर: प्रयोग की व्यवस्था के बारे में थोड़ा समझाइए। और यह भी बताइए कि आइंस्टाइन द्वारा सौ साल पहले की गई सैद्धांतिक भविष्यवाणी को साबित करने में इतना समय क्यों लगा। यह प्रयोग सेट करके सफल न होता तो हम उन गुरुत्व तरंगों का अवलोकन भी न कर पाते।

पीडी: बिलकुल। देखिए, गुरुत्वाकर्षण सारे बलों में सबसे दुर्बल है। उदाहरण के लिए, यदि मैं दो प्रोटॉन लेकर पूछूं कि इनके बीच लगने वाला गुरुत्वाकर्षण का बल विद्युतीय विकर्षण की तुलना में कितना होगा। आप आसानी से गणना कर सकते हैं कि गुरुत्व बल विद्युत-चुंबकीय बल के मुकाबले 10^{24} गुना कमज़ोर होगा। तो यह तो सही है कि जब भी द्रव्यमान गति करते हैं तो वे गुरुत्व तरंगें पैदा करते हैं...

डीआर: मगर आप उन्हें देख नहीं पाते...

पीडी:...मगर गुरुत्व तरंगों की मात्रा, उनकी शक्ति बहुत कम होती है। उदाहरण के लिए, यदि गुरुत्व तरंगों का कोई स्रोत भारी मात्रा में गुरुत्व तरंगें पैदा करता है, तो उससे करीब 30,000 प्रकाश-वर्ष की दूरी पर वह जो विकृति (यानी किन्हीं दो परीक्षण बिंदुओं के बीच की दूरी में अंतर बटा वास्तविक दूरी) वह पैदा करेगा, वह बहुत ही

कम होगी - प्रोटॉन के व्यास के एक अंश से भी कम। विकृति पैदा होने का कारण यह है कि गुरुत्व बल एक ज्यामितीय प्रभाव है। हम जानते ही हैं कि प्रोटॉन का व्यास करीब 10^{-15} मीटर होता है। अर्थात किसी शक्तिशाली गुरुत्व तरंग स्रोत (जैसे विस्फोटित होता कोई शक्तिशाली सुपरनोवा) से पैदा हुई गुरुत्व तरंगों को 30,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर नापने के लिए हमें 4 किलोमीटर दूर रखी दो वस्तुओं के बीच की दूरी में होने वाले परिवर्तन को नापना होगा और यह परिवर्तन प्रोटॉन के व्यास से भी कम होगा। सोचकर भी दिमाग चकरा जाता है।

डीआर:... यानी मापन की संवेदनशीलता...

पीडी: हमें मापन में इतनी संवेदनशीलता की ज़रूरत है। आखिर एक-दूसरे से 4 किलोमीटर दूर रखे दर्पणों के बीच की दूरी को कैसे नापेंगे और जब कोई शक्तिशाली गुरुत्व तरंग गुज़रेगी तो इस दूरी में होने वाले अत्यंत सूक्ष्म परिवर्तन को कैसे नापेंगे, जो प्रोटॉन के व्यास के एक अंश के बराबर होगा? इसके लिए जिस तकनीक का उपयोग किया गया...

डीआर: बहुत पेचीदा...

पीडी: ...वह एकदम अधुनातन तकनीक थी - इसमें प्रकाश के क्वांटम सिद्धांत का उपयोग किया था। उपकरण को भूंकपों के असर से अलग-थलग किया गया था, ज़ोरदार निर्वात का उपयोग किया गया और स्थिर लेज़र की समझ ताकि एक सशक्तलेज़र पैदा किया जा सके जिसकी तीव्रता में बिलकुल भी उतार-चढ़ाव न हों। अर्थात किसी लंबाई में प्रोटॉन के व्यास के एक अंश के बराबर परिवर्तन को नापने की ज़बर्दस्त मुश्किलों ने ही सैद्धांतिक भविष्यवाणी की पुष्टि में सौ साल का विलंब किया।

डीआर: तो क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यह एक मायने में दर्शाता है कि सैद्धांतिक भौतिकी का अनुसंधान प्रायोगिक विज्ञान में बराबर की प्रगति के बगैर संभव नहीं है?

पीडी: और क्या? देखिए, भौतिकी, और वास्तव में समूचा विज्ञान प्रायोगिक ज्ञान है। आखिरकार विज्ञान का काम ही यह पता करना है कि प्रकृति कैसे काम करती है और यह पता करने के लिए हम सिर्फ कपोल-कल्पनाएं नहीं कर सकते - वह तो मायथॉलॉजी होगी। तो हमें प्रकृति के कामकाज के मॉडल्स बनाने पड़ते हैं और सही मॉडल (या यों कहें कि सर्वोत्तम मॉडल) प्रस्तुत करने के लिए हमें प्रकृति के साथ सतत संवाद की कोशिश करनी होगी। प्रकृति के साथ संवाद का अर्थ है प्रयोग विकसित करना और यह समझना कि प्रकृति हमें क्या कह रही है। यानी प्रयोग और कुछ नहीं, प्रकृति और वैज्ञानिकों के बीच संवाद हैं। इसलिए भौतिकी को निहायत सटीक प्रायोगिक नतीजों की ज़रूरत होती है।

मगर कई बार ऐसा होता है कि गुरुत्वाकर्षण जैसी अत्यंत दुर्बल चीज़ों के मामलों में प्रयोग करना आसान नहीं होता। और इसलिए सैद्धांतिक लोग, अपनी गणितीय मेधा का उपयोग करते हुए, सममिति और सौंदर्य बोध जैसे विचारों का उपयोग करते हुए मॉडल निर्मित करते हैं। आइंस्टाइन वे पहले-पहले भौतिक शास्त्री थे जिन्होंने सौंदर्य बोध को जगह दी थी।

डीआर: किंतु किसी बिंदु पर तो आपको प्रायोगिक सत्यापन की आवश्यकता होती है...

पीडी: सही कहा। दरअसल, आइंस्टाइन का सामान्य सापेक्षता का जो सिद्धांत अपने अंतिम रूप में 1915 में प्रस्तुत किया गया था, उसके द्वारा की गई पहली प्रायोगिक भविष्यवाणी, यानी प्रकाश का मुड़ना 1921 में देखा गया था। यानी पहली भविष्यवाणी के सत्यापन में 6 साल लगे थे।

डीआर: इस प्रयोग में दुनिया के विभिन्न हिस्सों के वैज्ञानिकों के दल शामिल हुए थे - वास्तविक प्रयोग में नहीं किंतु उस प्रयोग से पहले ज़रूरी गणनाएं करने वगैरह में। इसमें भारतीय वैज्ञानिकों की भूमिका के बारे में कुछ बताइए।

पीडी: ज़रूर, भारतीय वैज्ञानिकों के समूह, खास तौर से रामन रिसर्च इंस्टीट्यूट के प्रोफेसर बाला अय्यर के नेतृत्व में, उन्होंने यह गणना की थी कि जब दो द्रव्यमान बिंदु एक दूसरे के इर्द-गिर्द घूमते हैं, तो वे किस तरह के गुरुत्वीय तरंग संकेत पैदा करते हैं। न्यूनतम स्तर के संकेत के बारे में पहले से पता था मगर बाला अय्यर और उनके

छात्रों ने उच्चतर श्रेणी की गणनाएं जिन्हें न्यूटन-उपरांत सन्निकटन कहते हैं। उन्होंने 3.5 श्रेणी से अधिक के संकेतों की गणना की थी जिन्हें कलरव संकेत कहते हैं क्योंकि ये पक्षियों की चहचहाहट जैसे होते हैं। अर्थात ये लोग आइंस्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के आधार पर गणनाएं कर रहे थे मगर एक गणितीय संकेत भी विकसित कर रहे थे ताकि हम यह कह सकें कि गुरुत्व तरंगों का संकेत ऐसा होगा। फिर भी सवाल यह था कि ऐसे संकेत को प्रायोगिक रूप से पकड़ेंगे कैसे। जैसा कि मैंने पहले ही कहा था, ये संकेत बहुत क्षीण होते हैं। प्रयोग में बहुत शोरगुल होता है, तो संभावना यह है कि संकेत शोरगुल में खो जाएगा।

डीआर: तो इसे शोरगुल से अलग करके देखना होगा...

पीडी: वह तकनीक तो जानी-मानी है - रैडार में आप यही करते हैं - इसे मैच्ड फिल्टरिंग तकनीक कहते हैं।

डीआर: जी हां, आपको पृष्ठभूमि में जो शोर हो रहा है उसे छानकर अलग कर देना होता है।

पीडी: हां। तो यदि आपको संकेत का सही स्वरूप पता हो - जो बाला अय्यर का समूह विकसित कर रहा था - यानी संकेत का सही रूप तो पता है मगर डिटेक्टर के आउटपुट (यानी डिटेक्टर से आ रहे संकेत) में तो बहुत सारा शोर भी शामिल होगा और संकेत इसमें गुम हो जाएगा। इसे कैसे सुलझाएं, कैसे संकेत को शोर में से अलग करें? पुणे स्थित इंटरनेशनल युनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रॉनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स (आयूका) के भूतपूर्व प्रोफेसर संजीव धुरंधर और उनके छात्रों - अधिकांश पोस्ट-डॉक्टरल छात्रों - ने यही काम किया। प्रसंगवश, उस समय मैं भी उनके साथ पोस्ट-डॉक्टरल छात्र था। प्रोफेसर धुरंधर ने अपनी पूरी टीम को यह समस्या सुलझाने में लगाया कि शोरगुल में से संकेत को कैसे अलग किया जाए। इस टीम ने वे तरीके विकसित किए जिनकी मदद से मैच्ड फिल्टरिंग तकनीक की मदद से आप संकेत को अलग कर सकते हैं।

डीआर: एक प्रस्ताव है, जो कई वर्षों से चला आ रहा है कि यूएस जैसी ही एक प्रयोगशाला यहां भारत में भी स्थापित की जाए। भारत में क्यों? एक और वैसी ही व्यवस्था बनाने की ज़रूरत क्या है? क्या इसका सम्बंध इस बात से है कि प्रयोगशाला भूमध्य रेखा के निकट होनी चाहिए? इसके बारे में आप कुछ बताएंगे क्या?

पीडी: यह एक महत्वपूर्ण सवाल है। अब जब दो डिटेक्टर्स ने गुरुत्व तरंगों को पकड़ लिया है, तो उनकी दिशा का पता कैसे लगाएं। यदि दो डिटेक्टर्स हैं तो गुरुत्व तरंगों का स्रोत किसी भी दिशा में हो सकता है। तो मान लीजिए कि यदि एक लिगो डिटेक्टर किसी बिंदु पर है, दूसरा जिस बिंदु पर है वह गुरुत्व तरंग स्रोत के ज़्यादा नज़दीक है। तो नज़दीक वाला डिटेक्टर संकेत को पहले ग्रहण करेगा, और फिर कुछ समय बाद संकेत दूसरे डिटेक्टर तक पहुंचेगा। सवाल यह है कि अधिकतम विलंब कितना हो सकता है। यदि एक डिटेक्टर उत्तरी ध्रुव पर हो और दूसरा दक्षिणी ध्रुव पर हो तो अंतर सर्वाधिक होगा। अधिकतम विलंब लगभग 40 मिलीसेकंड का हो सकता है। अब स्थिति यह है कि हमारे पास दो लिगो डिटेक्टर हैं और एक भारत में लगा दिया जाए तो अधिकतम विलंब लगभग 38 मिलीसेकंड का होगा। यह अधिकतम संभव अंतर के आसपास ही है। इसलिए भारत वह प्रमुख देश है जहां एक डिटेक्टर लगाया जाना चाहिए ताकि संकेतों के पहुंचने में अंतर अधिकतम हो। इसके आधार पर हम तरंगों के स्रोत की दिशा पता कर सकेंगे।

डीआर: इसे ही ट्रायएंगुलेशन कहते हैं।

पीडी: सही कहा, ट्रायएंगुलेशन। और भारत में लिगो प्रयोगशाला का प्रस्ताव पिछले 4 वर्षों से रहा है। दरअसल, लिगो के लोगों ने तो कहा है कि हम भारत में उन्नत लिगो उपकरण भेजेंगे। आप उन्हें स्थापित कीजिए और जमाइए। आप पता कीजिए कि उनका सर्वोत्तम उपयोग कैसे करें। एक पूरा इंडिगो कंसॉर्शियम अस्तित्व में है और दिल्ली विश्वविद्यालय इसका हिस्सा है। मैं भी कंसॉर्शियम का सदस्य हूं।

डीआर: तो संभावनाएं क्या हैं?

पीडी: यह प्रस्ताव मंत्रि मंडल के समक्ष पिछले दो वर्षों से पड़ा है। लिगो-इंडिया डिटेक्टर स्थापित करने की लागत करीब 1300 करोड़ रुपए है। किसी कारण से मंत्रि मंडल इस पर बैठा है। हम उम्मीद करते हैं कि यह जल्दी ही

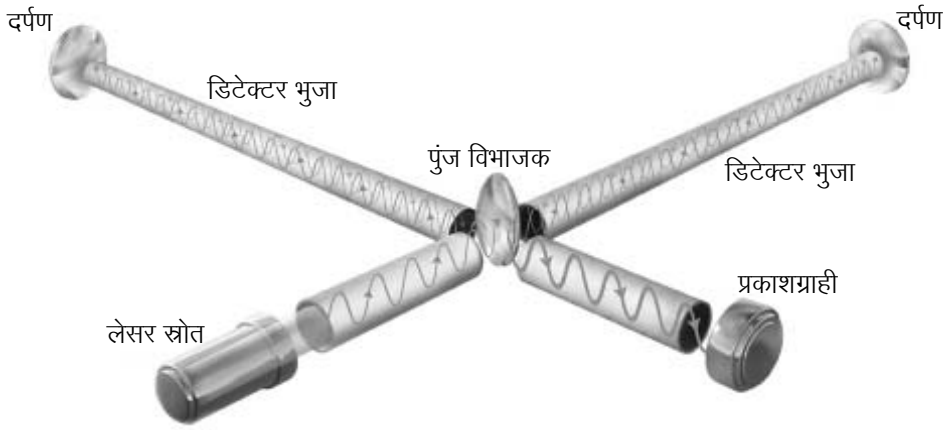

मंज़ूर हो जाएगा, खासकर प्रधान मंत्री के इस ट्विटर के बाद कि गुरुत्व तरंगें खोज ली गई हैं, भारत में एक डिटेक्टर होना चाहिए।

डीआर: क्या ऐसा कुछ हद तक इस कारण से है कि पारंपरिक रूप से भारत में बुनियादी अनुसंधान में निवेश करने को लेकर एक हिचक है। हम यह सवाल पूछते रहते हैं कि इससे क्या हासिल होगा, या इसके व्यावहारिक उपयोग क्या हैं? क्या यह उस हिचक का हिस्सा है?

पीडी: जवाब हां भी है और नहीं भी। हिचक होना स्वाभाविक है, आखिरकार भारत एक विकासशील देश है। इसलिए हमें इस बात को लेकर बहुत सतर्क रहना चाहिए कि हम अपना पैसा कहां लगा रहे हैं। किंतु मैं यह भी कहूंगा कि जो भौतिक शास्त्री गुरुत्व तरंगों पर काम कर रहे हैं, वे भी थोड़ा हिचकते हैं क्योंकि रकम बहुत बड़ी है और यह प्रयोग बहुत मुश्किल है। इसलिए यह अस्वाभाविक नहीं है कि गुरुत्व तरंगों से असम्बंधित वैज्ञानिक हमेशा से थोड़े शंकालु रहे हैं।

डीआर: बस एक अंतिम सवाल और। वैज्ञानिकों का एक समुदाय रहा है जो गुरुत्व तरंगों को लेकर काफी समय तक शंकालु था - हम इनकी उपस्थिति को कभी प्रमाणित कर भी पाएंगे या नहीं? और आज हम जो चर्चा कर रहे हैं, उसी तरह के सवाल यूएस में थे। और नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्सेज़ को इस प्रोजेक्ट को मंज़ूरी देने में काफी समय और साहस की ज़रूरत पड़ी थी। मगर अंततः...

पीडी: उन्होंने खोज ही लिया।

डीआर: उन्होंने खोज लिया, जिसने कई सारी शंकाओं को निर्मूल कर दिया है। और इस तथ्य के मद्देनज़र कि ये तरंगें ब्लैक होल्स से निकली हैं, क्या इसने ब्लैक होल्स को लेकर मौजूद शंकाओं को भी निर्मूल कर दिया है?

पीडी: हूं...शायद नहीं। 11 फरवरी की घोषणा में जो यह कहा गया कि दो ब्लैक होल्स धीरे-धीरे नज़दीक आए, और फिर आपस में विलीन होकर उन्होंने 62 सौर द्रव्यमान के बराबर के एक पिंड को जन्म दिया, तो इस बात के प्रमाण अप्रत्यक्ष हैं कि वे ब्लैक होल्स ही थे, दो सघन पिंड नहीं थे। ब्लैक होल्स प्रमाणित होने के लिए हमें ब्लैक होल्स जैसे संकेत मिलने चाहिए जिन्हें क्वासी-नॉर्मल मोड गुरुत्व तरंग उत्सर्जन कहते हैं। इसे कहते हैं ब्लैक होल्स की झनझनाहट। प्रसंगवश, बता दूं कि ब्लैक होल्स की झनझनाहट की बात करने वाले प्रथम व्यक्ति भारत के एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक थे - सी.वी. विश्वेश्वरा। अब वे सेवा निवृत्त हो चुके हैं और बैंगलोर में रहते हैं। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 1970 में एक प्रयोग विकसित किया था जिसमें ब्लैक होल को विचलित किया जाता है और यह देखा जाता है कि ऐसा करने पर ब्लैक होल कैसे व्यवहार करता है। अर्थात क्वासी-नॉर्मल मोड का अनुसंधान विश्वेश्वरा ने शुरू किया था। और 11 फरवरी की घोषणा में जो यह कहा गया है कि वहां दो ब्लैक होल्स विलीन हो रहे थे, इसी बात पर आधारित है कि उन्होंने जो झनझनाहट महसूस की है वह लगभग ब्लैक होल्स से मेल खाती है। मगर संकेत और शोर का अनुपात बहुत कम है, इसलिए कहना मुश्किल है कि हम क्या देख रहे हैं। अलबत्ता, लिगो डिटेक्टर में प्रगति के साथ हम शायद ज़्यादा आश्वस्त होकर दावे कर सकेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***